मंथन

यूथ रूबरू का मासिक विचार पत्र

श्रीफल फाउंडेशन की प्रस्तुति

वर्ष : 06
अंक : 07
माह : मई 2021
मूल्य : निःशुल्क

“दुनिया का हर व्यक्ति यही चाहता है कि उसके सामने जो भी आए, उससे बात करे तो उसका चेहरा मुस्कुराता हुआ हो।”
- अंतर्मुखी

आलेख - प्रथम

कर्मों की गति जाने ना कोए

संपादकीय

धर्मानुरागी बंधुओं
सादर जय जिनेन्द्र

आज पूरा विश्व एक महामारी से पीड़ित है। हर घर-परिवार में इस महामारी का प्रकोप देखा जा सकता है। सरकारों से लेकर आम आदमी तक सब जैसे एक छोटे से वायरस के आगे पस्त हो गए हैं। हमारे देश की धार्मिक मान्यताएं चाहें वह हिन्दू धर्म की मान्यताएं हों या जैन धर्म की मान्यताएं हों, सभी कर्म सिद्धांत पर बहुत जोर देती हैं और यह कहा जाता है कि जैसा कर्म करेगा, वैसा फल भोगेगा इंसान। आज इस महामारी को देख कर कुछ ऐसा ही लग रहा है कि यह शायद मानव जाति के उन कर्मों का फल है जो उसने इस प्रकृति के साथ किए हैं। मानव सभ्यता ने प्रकृति का जिस ढंग से दोहन किया है, आज प्रकृति किसी ना किसी रूप में उसी का बदला हम से ले रही है।

जैन धर्म में कर्म सिद्धांत को बहुत विस्तार से समझाया गया है और इस बार के अंक में हमने इसी पर चर्चा करने का प्रयास किया है। अंतर्मुखी मुनि श्री पुज्य सागर जी महाराज ने कर्म सिद्धांत पर बहुत सारगर्भित आलेख लिखा है। इसके साथ ही कर्म गति को समझने के लिए जैन ग्रंथों और पुराणों में दी गई कुछ रोचक और सरस कथाएं भी हैं जो मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज समय-समय पर विभिन्न माध्यमों से प्रसारित करते रहे हैं। एक आलेख है जो जैन दर्शन में कर्म के भेद पर आधारित है और बाकी आचार्य शांति सागर जी महाराज के जीवन पर आधारित धारावाहिक और अन्य स्तम्भ तो हैं ही।

आशा है हमारा यह प्रयास आपको पसंद आएगा।

धन्यवाद

अंतर्मुखी मुनि
श्री पूज्य सागर जी महाराज

कोरोना महामारी ने ऐसी स्थितियां बना दी है कि अब सब कहने लगे हैं कि भगवान बहुत हो गया, अब रोक दो आप, देखा नहीं जा रहा है और जब आप ऐसा कहते हैं तो दूसरी ओर से आवाज आती है....कर्मों का फल है। जब कोई किसी गलत आरोप में फंस जाता है तो कहता है कि मेरा नाम तो जबरन आ गया, मैं तो वहां था ही नहीं, या मैंने तो ऐसा कुछ किया ही नहीं, तो भी... दूसरी ओर से आवाज आती है..... कर्म का फल है। मेरा बेटा कम उम्र में चल बसा ... मुझे नौकरी नही मिलती, व्यापार नहीं चलता ...क्यों, क्योंकि यह कर्मफल है। इसी तरह जब कुछ अच्छा होता है जैसे अच्छी नौकरी मिल जाए, तो .... दूसरी ओर से आवाज आती है कर्म का फल है। आज मेरा सम्मान है .... दूसरी ओर से आवाज आती है कर्म का फल है।

अर्थात कह सकते हैं कि मनुष्य के साथ जो भी हो चाहे वह अच्छा हो या बुरा, उसका कारण एक ही है... कर्मफल। अब प्रश्न हो सकता है वह दूसरी आवाज आती कहां से है? तो इस का उत्तर है कि यह आवाज दो जगह से आ सकती है-एक तो वह जो तुम्हारे आस- पास है या घट रहा है, वह तुम्हें बताएगा और दूसरा तुम्हारी अंतरात्मा से आवाज आएगी जो मात्र तुम्हें ही सुनाई देगी।

आखिर कर्म है क्या???

तो आओ समझते हैं कि कर्म क्या हैं। जो आत्मा के स्वभाव को बिगाड़ देता है उसे कर्म कहते हैं। वैसे तो सामान्य तौर पर कर्म एक प्रकार का ही है, लेकिन पुण्य, पाप के भेद से दो प्रकार का हो जाता है। मनुष्य सकारात्मक कार्य करे, सोचे और भाव रखे तो वह शुभ कर्म है, जिसे पुण्य कर्म भी कहते हैं। मनुष्य यदि नकारात्मक कार्य करे, सोचे या भाव रखे तो वह अशुभ कर्म है जिसे पाप कर्म भी कहते हैं।

इसे उदाहरण से समझते हैं- किसी ने आप को गाली दी और जवाब में आपने उसे गाली दी, मारा या और कोई प्रतिक्रिया की तो उस समय जो आप के अन्दर की मानवता छूटी और भाव बिगड़े वही अशुभ कर्म है। आप ने किसी को संकट से निकला, सहयोग किया, दया की और आप के अन्दर अहंकार का भाव नही आया तो वह शुभ कर्म है।

एक पंक्ति में कर्म की परिभाषा समझनी है तो यह है कि जो मनुष्य की अन्दर की मानवता भुला दे वह अशुभ कर्म है और जो मनुष्य की मानवता को जाग्रत कर दे वह शुभ कर्म है।

जैन शास्त्रों में कर्म के तीन, चार, आठ प्रकार के भेद बताएं है और कर्मों के भेद भावों की अप्रेक्षा से संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रकार के भी बताए हैं, इसीलिए तो हम देखते हैं कि जितने मनुष्य (प्राणी) उतने ही प्रकार के दुख के कारण और उतने ही प्रकार के सुख के कारण। कहने का मतलब है हर मनुष्य के दुख और सुख का कारण अलग-अलग है।

एक बात और है कि जब मनुष्य शुभ- अशुभ दोनों प्रकार के कार्य करना छोड़ देता है तब उसे न पुण्य का बंध होता है और ना पाप का बंध होता है। अब प्रश्न हो सकता कि फिर मनुष्य क्या करता है? तो उत्तर है कि वह मात्र आत्म ध्यान करता है जिससे शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के कर्म नाश को प्राप्त हो जाते हैं और आत्मा कर्म रहित होकर परमात्मा बन जाती है।

मनुष्य अपने-अपने कर्म का फल भोगता है

कर्म तो दिखाई नही देता, पर कर्म का फल हम सब को सुख-दुख के रूप में दिखाई दे जाता है। इससे यह तो मानना ही होगा की कर्म होते हैं। अगर कर्म को नहीं मानेंगे तो प्रश्न यह होगा कि जो मनुष्य के साथ अच्छा - बुरा हो रहा है वह कौन कर

रहा है? अगर यह कहें कि भगवान कर रहा है तो प्रश्न होगा की भगवान भेद भाव क्यों करता है? जो भेद भाव करे वह भगवान कैसे हो सकता है? ऐसे न जाने कितने सवाल ओर उठ सकते हैं। जिनका कोई अंत ही नहीं होगा, इसलिए यह सिद्ध है कि मनुष्य अपने-अपने कर्म का फल भोगता है।

कर्म के पीछे की दृष्टि सकारात्मक होनी चाहिए

एक महत्वपूर्ण बात और है कि हर मनुष्य की आत्मा भगवान है बस कर्मों के कारण उस आत्मा में भगवान दिखाई नही देते है, या कहें कि अनुभव में नही आते हैं। आत्मा में परमात्मा का अनुभव करने के लिए पहले शुभ कार्य करना होगा और अशुभ कार्य का त्याग करना होगा। सकारात्मक दृष्टि के साथ जो कार्य किया जाए वह शुभ कार्य और और नकारत्मक दृष्टि के साथ किया जाए तो वह अशुभ कार्य है। फिर चाहे वह भगवान की पूजा, आराधना हो या किसी दुखी मनुष्य, प्राणी की सेवा का काम।

हम जो भगवान की प्रतिमा की आराधना करते है, दुखी की सेवा करते है वह पुराने अशुभ कर्म नाश और वर्तमान में शुभ कर्म के बन्ध के लिए करते हैं। लालच, स्वार्थ आदि से किया गया सकारात्मक कार्य भी अशुभ है अर्थात पुण्य का कारण नही हो सकता है। काम कैसा भी हो उसके पीछे दृष्टि सकारात्मक होनी चाहिए। हर समय प्राणी कोई ना कोई कार्य करता या सोचता ही है। इसका मतलब है कि संसारी मनुष्य हर समय कर्म का बन्ध करता ही है। जिस समय प्राणी मात्र के जैसे भाव, विचार, क्रिया होगी उस समय वैसा ही कर्म बन्ध हो जाता है।

एक विषय और ध्यान रखने की आवश्यकता है- आत्मा के साथ उन्हीं कर्मो का बन्ध होता है जिन कर्मो के साथ कषाय और योग होते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ यह चार कषाय हैं और मन, वचन, काया की चंचलता का नाम योग है। कहने का मतलब है कि हम जो कार्य कर रहे हैं उस कार्य में कषाय और योग है और कषाय या योग जितना अधिक होगा उतना अधिक दुख देने वाला कर्म बंध होगा। जिस कर्म के साथ कषाय और योग नही है वह कर्म आता तो है पर उसका कर्म बन्ध नहीं होता है। इसे उदाहरण से समझते हैं- आप को किसी ने गाली दी, भला-बुरा कहा और आप में जवाब में कुछ नहीं कहा और मन में यह सोचा की यह व्यक्ति क्यों मेरे कारण अशुभ कर्म का बंध कर रहा है। इसे सद्बुद्धि आए। यह विचार करते ही आप को शुभ कर्म का बन्ध होगा और जो पहले अशुभ कर्म का बन्ध किया हुआ था जिसके कारण उस व्यक्ति ने आपको गाली दी थी उस अशुभ कर्म का नाश अवश्य होगा। लेकिन सकारात्मक विचार लाने के बजाए ऐसी स्थिति में आपने भी उसे उसी तरह गाली दी या भला-बुरा कहा तो समझ लेना आप ने एक और अशुभ कर्म का और बन्ध कर लिया है। शुभ कार्य से धीरे-धीरे अशुभ कर्म जीवन से निकल जाते हैं और एक दिन वह आता है कि जीवन में अशुभ कर्म नहीं बचते। मात्र शुभ कर्म ही जीवन में रह जाते हैं। फिर धीरे-धीरे शुभ कार्य भी छूटते जाते हैं और यह आत्मा कर्मरहित होकर परमात्मा बन जाती है।

हम सब में परमात्मा है

कर्म के इस खेल में यह समझ लेना कि संसार में सुख शुभ क्रिया से और शाश्वत सुख शुभ-अशुभ दोनों क्रिया से रहित होने पर ही मिलता है। तो आप समझ लेना हम सब में परमात्मा है पर उस परमात्मा को प्रकट करने के लिए कर्मों का नाश करना होगा। उसके लिए क्रमशः पहले अशुभ कर्मो का नाश करना होगा, फिर शुभ कर्मों का नाश करना होगा। उसके बाद जो अवस्था होगी वह कर्मरहित होगी जो तुम्हारी अपनी है।

अंत में इतना समझ लेना कि अशुभ कर्मो से बचना है तो वर्तमान के बारे में ही सोचना। भूतकाल और भविष्य की मत सोचना। वर्तमान में जो भी, जैसी भी परिस्थिति हो, उसमें रहने की कला सीख लेनी चाहिए। इससे अशुभ कर्मो और उसके पाप के फल से बच सकते हैं। वैसे भी सोचने की बात यह है कि जब हमें 6 सेकेंड पहले किये हुए कर्मा के फल और 6 सेकेंड बाद स्थिति का ही पता नहीं तो फिर 60 साल की क्यों सोचें।

"मुस्कुराते हुए चेहरे लाखों बीमारियों को ठीक कर देते हैं। मानसिक रोग से दूर रहता है। - अंतर्मुखी"

कर भला तो हो भला

कर्म सिद्धांत वैसे तो बहुत गूढ़ विषय है, जिसे समझना बहुत आसान नहीं है, लेकिन थोड़ा गहराई में जाएं तो हम इसे बहुत कुछ समझ जाते हैं। जैन पुराणें और शास्त्रों में कर्म सिद्धांत को आसान ढंग से समझाने के लिए कई कथाएं, उपकथाएं, प्रसंग आदि वर्णित हैं। **अंतुर्मुखी मुनि श्री पुज्य सागर जी महाराज** धर्म प्रभावना के लिए नियमित रूप से इन्हें श्रावकों तक पहुंचाते रहे हैं। इस बार चूंकि हम कर्म सिद्धांत पर ही बात कर रहे हैं, इसलिए उन्हीं में से कुछ कथाएं हम आपके लिए लेकर आए हैं, जो पढ़ने में ना सिर्फ रोचक और सरस हैं, बल्कि बहुत आसानी से इस गूढ़ विषय को समझाती भी हैं। **तो आनंद लीजिए इन कथाओं का और समझिए कर्म सिद्धांत को।**

1

हर व्यक्ति में धर्म की स्थापना - क्यों आवश्यक है?

जब युद्ध समाप्त हुआ और भगवान श्रीकृष्ण द्वारका वापस लौट आए। तब पटरानी रुकमणीजी उनके पास आईं, और जिज्ञासावश पूछा -"हे माधव, महायुद्ध में द्रोणाचार्य और भीष्म पितामाह जैसे महान, ज्ञानी, पुण्यशाली, शक्तिशाली योद्धाओं को युद्ध में छल से मारने में आप क्यों सहभागी हुए ?" उनकी महानता की कोई गरिमा नहीं .. ऐसे महाबलियों का कोई मूल्य नहीं ३ क्या यह अधर्म नहीं है? आप इस पाप में कैसे सहभागी हुए प्रभु?

श्रीकृष्ण ने कहा "हे प्रिये, उन दोनों की महानता और अच्छाई के बारे में कोई संदेह नहीं है। किन्तु दोनों ने अपने जीवन में "केवल एक पाप" किया था दृ जिसके कारण उनके जीवन के सभी पुण्य- भलाई अच्छे गुण धुल गए।"

रुकमणीजी "वह कौनसा पाप था नाथ..??"

श्रीकृष्ण गंभीर होकर बोलेरू "हे देवी,

दोनों ही उस भरी सभा में उपस्थित थे

जहां द्रौपदी के वस्त्रहरण का प्रयास हुआ , एक स्त्री की लाज पर अधर्मी हाथ उठे जहाँ ...

दोनों ही इस स्त्री जाति पर हुए अत्याचार और अधर्म को रोकने के लिए सक्षम' थे ..! किन्तु, वे दोनों चुपचाप ये अन्याय देखते रहे ३ जिसके कारण उनके जीवन के सभी पुण्य, भलाई कर्म और अच्छे गुण धुल गए..!!!"

जो नेकी और अच्छाई एक स्त्री पर हो रहे अत्याचार को रोक न सकें उसका क्या मोल क्या अर्थ क्या ? यह एक पाप उन दोनों की श्रेष्ठताओं के नाश के लिए पर्याप्त था!"

रुकमणीजी "परंतु कर्ण का क्या दोष था ? एक श्रेष्ठ मित्र महापराक्रमी एवं महादानेश्वर कर्ण का क्या दोष था ? अर्जुन को छोड़कर किसी भी पांडव का वध न करने का वचन अपनी माता कुंती को दिया ! वचन पालन के लिए अपनी ढाल कवच कुण्डल भी देव इंद्र को दे दिए ! ऐसी महान व्यक्ति को किस पाप ने मारा ?"

श्रीकृष्णरू "महावीर अभिमन्यु सात सात महयोद्धाओं से अकेले युद्ध कर जब गिर पड़ा। जब मृत्यु उसके के सामने खड़ी थी , वह परमवीर बालक का जीवन अंत के करीब था तब उसने निकट ही खड़े कर्ण से पीने के जल की आशा रखी।

उसे विश्वास था कि शत्रु होने के पश्चात भी दानवीर कर्ण उसे पीने के लिए अवश्य जल देंगे।"

"किन्तु स्वयं अपने पास स्वच्छ जल होते भी मरते बालक को जल नहीं दिया सिर्फ मित्र दुर्योधन नाराज ना हो, इसी कारण। वह वीर बालयोद्धा जल की तृष्णा में मृत्यु को प्राप्त हो गया।"

हे रुकमणी, इस एक अमानवीय पाप ने कर्ण के दान करके प्राप्त किए सारे पुण्य को नष्ट करने के लिए पर्याप्त था।"

और प्रिये काल की भी गति देखो

उसी जल के झरने से बने दलदल में कर्ण का रथ का पहिया फंसा और उसकी मृत्यु का कारण बना!" हे प्रिये ३यही कर्म का असली सिद्धांत है ..!!

2

कर्म सिद्धांत में भाव का महत्व

भगवान महावीर स्वामी के समय में राजगृह नगर का राजा श्रेणिक था। एक दिन राजा श्रेणिक राज सभा में बैठे थे तभी समाचार मिला कि नगर के बाहर उद्यान में भगवान महावीर का समवशरण आया है। राजा ने मंत्री को आदेश दिया कि उद्यान में भगवान महावीर का समवशरण आया है, तो उनके दर्शन को चलना चाहिए। राजा अपनी सेना और प्रजा के साथ दर्शन करने को निकला। राजा हाथी पर सवार हुआ और हाथों में पूजन की साम्रगी सज्ज थी। जो भी लोग साथ में चल रहे थे, वह सब नाच -गा झूम भक्ति के साथ चल रहे थे। जो भी नगर का श्रावक देखता-सुनता तो वह भी राजा के साथ समवशरण में जाने के लिए जुड़ता चलता था। रास्ते में एक तालाब में मेंढक था उसने भी यह सब सुना तो उसका मन भी दर्शन करने को हो गया। अब वह खाली हाथ कैसे जाए ... तो उसने अपने मुख में एक कमल के फूल की पंखुडी दबाई और वह भी समवशरण में भगवान महावीर के दर्शन को निकल गया। किन्तु इतनी भीड़ में वह मेंढक राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे आ गया और उसकी

मृत्यु हो गई। राजा अपनी प्रजा और सेना सहित जब समवशरण में पहुँचा , तब वहाँ पहले से अनेक श्रावक, देव, तिर्यंच इत्यादि मौजूद थे। राजा श्रेणिक ने भगवान को पूजन साम्रगी चढ़ा नमन कर स्तुति की। पर राजा श्रेणिक क्या देखते हैं कि वहां पर अनेक देव थे और सब सुंदर थे पर एक देव के मुकुट में मेंढक का चिन्ह था। राजा श्रेणिक ने गणधर परमेष्ठि से पूछा- इस देव के मुकुट पर मेंढक का चिन्ह क्यों है?? तब गणधर परमेष्ठि में कहा कि यह मेंढक अभी तुम्हारे हाथी के पैर के नीचे आकर मृत्यु को प्राप्त हुआ किंतु शुभ भाव और जिनेंद्र भक्ति के होने से वह अब देव बना है। यह कर्म सिद्धांत से ही संभव हुआ है कि एक मेंढक देव बना।

कर्म सिद्धांत का दूसरा पहलू देखिए - जो मेंढक था वह पहले उसी राजगृह नगर में एक सेठ हुआ करता था साथ ही वह जिनेन्द्र भक्त था। प्रतिदिन भगवान का पूजन और स्तुति किया करता था। एक दिन वह भगवान की भक्ति करते-करते सामायिक में बैठक गया और एक नियम तय किया कि जब तक दीपक जलता रहेगा तब तक सामायिक करता रहूँगा। समय बीतता गया और जैसे जैसे दिपक में घी कम होता, सेठ की पत्नी उसमें घी डाल देती। समय निकलता गया। अब सेठ को पानी की प्यास लगने लगी, गला सूखने लगा। वह सामायिक तो कर रहा था पर अंदर ही अंदर प्यास का भाव होने से व्याकुल हो गया। उसी समय आयु कर्म का बंध हुआ। उसने प्यास बुझाने के भाव को सामायिक से अधिक महत्व दिया था जिसके कारण वह मेंढक की रुप में जन्मा था।

3

बुरी कल्पनाएं न करना ही श्रेयस्कर

एक संत अत्यंत सरल स्वभाव के थे। वे जब भिक्षा मांगते थे, तो कहते थे परमात्मा के नाम पर दे दो। जो जैसा करेगा, वैसा ही भरेगा। उस नगर में एक कुलटा व्यभिचारिणी स्त्री रहती थी। जब वह स्त्री संत के वचन सुनती है कि जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा तो वह सोचती है कि ष्यह संत मुझे तो नहीं सुनाता है? ष्चूंकि वह गलत कर्म में लिप्त थी तो संत की यह बात उसे चोर की दाढ़ी में तिनके की तरह लगी। और उसके मन में पाप आ गया। उसने सोचा कि, कैसे भी करके इस संत को मार दूँ? स्त्री ने दो लड्डू खूब घी मेवा आदि डालकर बनाए और उन में जहर मिला दिया। जब वह संत उस स्त्री के दरवाजे से गुजरा तो उसने कहा कि ष्जो जैसा करेगा, वैसा ही भरेगा। ष्स्त्री सुनकर बाहर आई, उसने संत से कहा कि यह दो लड्डू तुम्हारे लिए ही बनाए हैं। बहुत अच्छे हैं। इन्हें अभी खा लेना। ऐसा कहकर संत को दे दिए। संत तो सरल स्वभाव का था,

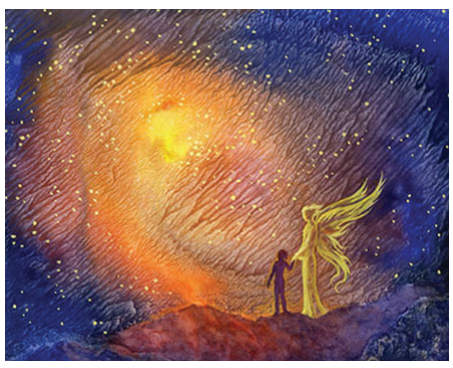

उसने लड्डू ले लिए और आगे बढ़ गया। आज उसे भिक्षा कुछ ज्यादा ही मिल गई थी। वहां अपने कुटी पर आया। उसने भिक्षा में मिले अन्य पदार्थ खा लिए, लड्डू वैसे ही रहे। संत ने सोचा कि ष्इतने अच्छे लड्डू हैं, इन्हें कल खा लूंगा।

उसी रात को उस स्त्री के पति और पुत्र कहीं बाहर से आ रहे थे। वे बहुत थक गए थे और भूख भी लग रही थी। दोनों ने सोचा कि संत की कुटी पर कुछ विश्राम कर लेते हैं। जब वह संत के पास पहुंचे तो संत ने उन्हें बैठाया। पुत्र ने कहा कि बाबा ! भूख लगी है, कुछ खाने के लिए हो तो दीजिए। ष्संत ने वे दोनों लड्डू एक पिता को और एक पुत्र को खाने के लिए दे दिए। लड्डू खाने के बाद दोनों का प्राणान्त हो गया। वे दोनों मर गये। जब वह स्त्री संत के पास आई तो सिर पटक कर रोने लगी कि यह लड्डू तो मैंने ही संत को मारने के लिए बनाए थे, यह क्या हो गया? स्त्री में मन ही मन यह सोचा कि यह संत मुझे कह रहा था ष्जैसा करोगे वैसा भरोगे और इसी बात पर मैंने उसे मारने का उपाय किया पर क्या हुआ? कहावत सही है !! जो गड्ढा तुम दूसरों को गिराने के लिए खोदते हो उसमें स्वयं भी गिर सकते हो। और कर्म सिद्धांत और धर्म का मूल संदेश यही है कि जो जैसा करता है उसी अनुरुप उसे उसका परिणाम भी मिलता है।

4

अपने सुख-दुख के नियंता हम ही

मालव देश में घटगांव नाम का शहर था। उस शहर में देविल नाम का एक धनी कुम्हार और धर्मिल नाम का नाई रहता था। दोनों ने मिलकर बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए एक धर्मशाला बनवाई। एक दिन देविल ने उस धर्मशाला में एक मुनिराज को ठहरा दिया। इस बात से नाराज होकर धर्मिल नाई में मुनिराज को धर्मशाला से बाहर निकाल दिया।

मुनिराज एक पेड़ के नीचे रात भर रहे और जहां पर मच्छरों में उन पर उपसर्ग किया। सुबह जब देविल में मुनिराज को बाहर देखा तो वह क्रोधित हो गया उसने धर्मिल नाई से बात की। बातों ही बातों में झगड़ा बढ़ गया इतनी बात बढ़ गई कि लड़ते- लड़ते दोनों मर गए। देविल मरकर सूअर हुआ और धर्मिल मरकर व्याघ्र हुआ। एक दिन कर्मयोग से गुप्त और

त्रिगुप्ति गुप्त नाम के दो मुनिराज जंगल में आए और गुफा में ध्यान करने बैठ गए।

इन मुनिराज को देखर सुअर को उसकी जाति का स्मरण हो गया। मुनिराज ने उपदेश सुनकर उसने व्रत धारण किया। इसी समय मनुष्य की गंध पाकर धर्मिल का जीव जो व्याघ्र बन गया था, वह मुनिराज को खाने के भाव से आया उनके समीप आया। सुअर ने व्याघ्र को आता देखा तो गुफा के बाहर खड़ा हो गया और व्याघ्र को गुफा के अंदर नहीं जाने दिया। एक का भाव मुनि को बचाने का था दूसरे का भाव उन्हीं को भोजन बनाने का था।

सूअर का भाव कर्म मुनिराज को बचाने का था, तो वह मरकर स्वर्ग में देव हुआ। और व्याघ्र का भाव कर्म मुनिराज को खाने का था, वह मरकर नरक में गया। इस कहानी से यह समझने की बात है कि व्यक्ति जैसे भाव करता वैसी ही क्रिया और वैसा ही फल भी उसे मिलता है। दोनों ही जानवर थे, पर भावो में अंतर होने से कर्म का बन्ध भी अलग अलग हुआ। हम स्वयं ही अपने सुख और दुख के कारण हैं।

"दुनिया का हर व्यक्ति यही चाहता है कि उसके सामने जो भी आए, उससे बात करे तो उसका चेहरा मुस्कुराता हुआ हो। - अंतर्मुखी"

5 पुण्यकर्म जब लौटते हैं ....!!

एक व्यक्ति अपने स्कूटर से घर जा रहा था। कुछ दूर जाने के बाद उसे सड़क पर एक बूढ़ी औरत दिखाई दी। जो बहुत ही थकी हुई सी लग रही थी और उसके चेहरे से मानों ऐसा लग रहा था कि वह उस सड़क पर बहुत समय से किसी यातायात साधन का इंतजार कर रही थी। उस व्यक्ति ने अपना स्कूटर को उस औरत के पास लाकर रोका और बूढ़ी औरत से पूछा "माताजी आपको कहाँ जाना है? आपको जहाँ भी जाना है, मैं आपको छोड़ दूंगा।"

अंजान आदमी को अचानक अपने सामने देखकर वह वृद्ध महिला थोड़ा घबरा गई। वृद्धा की घबराहट देख वह व्यक्ति समझ गया और उसने मुस्कुराते हुए कहा "माता जी मेरा नाम अमित है, आप चिंता ना करे मैं आपको सकुशल आपके घर तक छोड़ दूंगा। आप निश्चिन्त होकर मेरे साथ मेरे स्कूटर पर चलिये।"

अमित की बातें सुनकर वृद्ध महिला को तसल्ली हुई और साथ आने की सहमति देते हुए पूछा "तुम कितने रुपये लोगे मुझे घर तक छोड़ने का?"

अमित ने हँसते हुए कहा "माताजी मुझे कुछ नहीं चाहिए किंतु फिर भी अगर आप कुछ देना ही चाहती है तो बस आप भविष्य में अपनी तरफ से किसी जरूरतमंद कि किसी भी तरह से मदद कर देना।" अपनी बात को पूरी करके अमित ने उस वृद्धा को अपने स्कूटर पर बिठाया और उनके घर पर छोड़ने के पश्चात वहाँ से चला गया।

कुछ दिनों बाद वह वृद्ध औरत कुछ सामान खरीदने एक दुकान पर गई। दुकान से बाहर आकर वृद्धा ने देखा कि उसी दुकान के बाहर एक गर्भवती महिला कुछ खाने-पीने का सामान बेच रही है। उस वृद्ध महिला को यह समझते देर नही लगी कि जरूर इस लड़की की कोई बड़ी मजबूरी होगी जो इसे इस अवस्था में भी काम करना पड़ रहा है। वृद्धा के मन में उस महिला के लिए मदद की इच्छा जागृत हुई और उस गर्भवती महिला से कुछ खाने का सामान खरीद लिया। साथ ही वृद्धा ने चुपके से कुछ पैसे उसकी दुकान के पास इस भावना से रख दिए कि उसकी कुछ मदद हो जाएगी। ऐसा करके वह वृद्ध महिला वहां से तुरंत चली गई।

शाम को दुकान बंद करते वक्त उस गर्भवती महिला ने देखा कि उसकी दुकान पर हजार का नोट रखा हुआ था। हजार रूपये देखकर वह बहुत खुश हुई और अपने घर जाकर उसने अपने पति से कहा "अमित मैं जानती हूँ मेरे गर्भवती होने की वजह से घर का बहुत खर्चा बढ़ गया है परन्तु आज तुम्हे चिंता करने की कोई जरूरत नही क्योंकि मेरी दवाई के पैसों का इंतजाम हो गया है। मैंने आज ज्यादा पैसे कमाए है।" ऐसा कहकर उसने भगवान का शुक्रिया किया और अपने पति के गले लग गई।

6 कर्मफल तो भोगना ही पड़ेगा

एक बार भगवान श्रीराम के दरबार में न्याय पाने के लिए एक श्वान (कुत्ता) पहुंचा। जब लक्ष्मणजी ने उस श्वान से पूछा कि क्या कष्ट है? इस प्रश्न के उत्तर में श्वान ने कहा- 'मुझे भगवान श्रीराम से न्याय चाहिए। फिर भगवान श्रीराम उपस्थित हुए। उन्होंने श्वान से पूछा कि बताओ कैसे आना हुआ? तब श्वान ने कहा- 'प्रभु मैं खेत के मेड़ के बगल में लेटा था। तभी वहां से एक ब्राह्मण गुजर रहा था। उस ब्राह्मण ने अनावश्यक मुझ पर डंडे से प्रहार कर चोटिल किया है। मुझे न्याय चाहिए कि बिना किसी अपराध के उस ब्राह्मण ने मुझे क्यों पीटा? इसलिए आप उस ब्राह्मण को दंड दीजिए।

उस श्वान की पूरी बात सुनने के बाद भगवान श्रीराम ने उस ब्राह्मण को भी बुला लिया। उनसे प्रश्न हुए कि आपने इस कुत्ते को किस कारणवश पीटा? ब्राह्मण ने कहा- 'प्रभु मैं स्नान करने के लिए नदी की तरफ जा रहा था, तो सोचा कि यह श्वान कहीं मेरे कपड़े को स्पर्श कर मुझे अपवित्र न कर दे। इसलिए इसे दूर भगाने के लिए मैंने एक डंडे का प्रहार किया। भगवान ने श्वान से पुछा कि- 'तुम बताओ, इनको क्या दंड दिया जाए? तब श्वान ने कहा कि प्रभु मैं आपकी शरण में आया हूं। न्याय तो आपको ही करना है। इस पर भगवान ने पुनरू कहा कि- 'नहीं तुम बताओ, इन्हें क्या दंड मिलना चाहिए। वही दंड इन पर लागू होगा। तब श्वान ने कहा की इन ब्राह्मण को कालिंजर के एक मठ में मठाधीश बना दिया जाए।

यह सुनकर राज दरबार में उपस्थित सभी लोग अवाक रह गए, क्योंकि कालिंजर का वह मठ असीम वैभव, ऐश्वर्य और अकूट धन से समृद्ध था। उसका मठाधीश बनना गर्व की बात होती थी। तब भगवान राम ने पूंछा कि तुम दंड दे रहे हो या दंड का उपहास कर रहे हो? इसके उत्तर में श्वान ने भगवान श्रीराम से कहा- 'नहीं प्रभु मैं दंड दे रहा हूं। क्योंकि, पिछले योनि में मैं वहां का मठाधीश था, पर उस मठ में उपस्थित ऐश्वर्य, समृद्धि, अकूट धन ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी। मुझे जो सत्य के प्रति कार्य करना था, उसे न कर मैं गलत कर्मों में लिप्त रहने लगा। उसे ही जीवन का असली आनंद

समझ बैठा, जिससे मेरे तप का तेज खत्म होने लगा। फिर एक दिन मेरी मृत्यु भी हो गई। उसके बाद मुझे श्वान की योनि प्राप्त हुई है।

उस श्वान ने आगे भगवान श्रीराम से कहा- मेरे कर्म इतने खराब हो गए थे कि दोबारा मनुष्य जन्म भी नहीं मिला। इसलिए प्रभु मैं जानता हूं कि ये ब्राह्मण भी कालिंजर के मठ के मठाधीश होते ही ऐश्वर्य और भोग में लग जाएंगे। इनका भी निश्चित रूप से तप और तेज खत्म हो जाएगा। ये भी मेरी तरह श्वान बनकर द्वार-द्वार भोजन के लिए घूमेंगे। उस श्वान की रहस्य भरी बातों को सुनकर सभी लोग आश्चर्य से भर गए।

स्मरण रहे कि कर्म सिद्धान्त का यही नियम है कि प्राणी जो कर्म करता है, उसके फल को भोगने के लिए उसे दोबारा जन्म लेना ही पड़ता है, क्योंकि पूर्वकृत कर्म-फल पूर्व जन्म में पूरा नहीं हो पाता है अर्थात् कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल इस जन्म में (वर्तमान पर्याय) मिल जाता है और कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जिनके फल और परिणाम के लिए दोबारा जन्म यानी पुनर्जन्म लेना पड़ता है।

अतः स्पष्ट है कि आप अपने कर्मफल से नहीं बच सकते। आप जहां भी जाते हैं, जो कुछ भी करते हैं, आपके कर्म ही आपको शांतिपूर्वक देख रहे होते हैं। किसी भी दिन आपको आपके कर्म का फल संसार पर वहन करना ही होता है।

7 वैरभाव का दुख कई भवों तक भोगना पड़ता है

राजा सुलोचन और राजा पूर्णधन में बीच युद्ध हुआ। युद्ध का कारण था सुलोचन की पुत्री। सुलोचन अपनी बेटी उत्पलमती का विवाह पूर्णधन के साथ न कर सगर चक्रवर्ती से करना चाहता था। इस कारण युद्ध हुआ जिसमें सुलोचन मर गया। इस भव में दोनों काएक-दूसरे के प्रति वैर हो गया। सुलोचन के पुत्र सहस्त्रनयन और पूर्णधन के पुत्र मेघवान ने अजितनाथ भगवान के समवसरण में जाकर गणधर भगवान से पिता के वैर का कारण पूछा। तब गणधर भगवान कहने लगे भरत क्षेत्र में भावन नाम का वणिक रहता था। वह धन कमाने के लिए अन्य देश जा रहा था। उसने अपना चार करोड़ का धन अपने पुत्र हरिदासको दिया और कहा कि इस धन का उपयोग वैश्या गमन, शराब, जुआ आदि में नहीं करना और अच्छे संस्कारों के साथ रहना। पिता के जाने के बाद उसने धन के अहंकार में आकर अपना सारा धन वैश्यागमन, जुए और शराब में बर्बाद कर दिया। जब सारा धन चला गया तबवह चोरी कर अपने व्यसनों को पूरा करने लगा। एक दिन वह सुरंग के रास्ते धन चोरी करने राजमहल गया, इतने में पिता भावन घर आ गया। उसने पूछा की बेटा कहाँ है तोउसे पता चला कि वह तो चोरी करने गया। पिता बेटे को समझाने सुरंग के रास्ते उसके पास गया। उधर से बेटा आ रहा था। उसे डर लगा कि राजा के सिपाही आ रहे हैं। उसने बिना देखे ही तलवार चला दी। पिता का सिर कट गया। वह मर गए। बाद में उसने देखा कियह तो उसके पिता हैं। पिता को मैंने मारा इस भय से वह जंगल में चला गया। इस प्रकार पिता-पुत्र मरकर श्वान, बैल, नेवला, भैंसा आदि कई भव में दुःख भोगते रहे।फिर पुण्यकर्म के उदय से पिता भावन का जीव तो पूर्णधन बना और पुत्र हरिदास काजीव सुलोचन बना। गणधर भगवान ने कहा इसलिए तुम दोनों के पिता का युद्ध हुआ।

धारावाहिक-7

20वीं सदी की चारित्र कथा

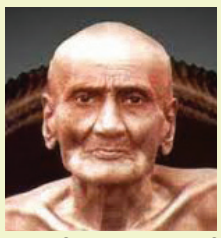

आचार्य शांति सागर जी

सत्य और मधुर भाषा बोलने में विश्वास करते थे सातगौड़ा

लेखक
अंतर्मुखी मुनि पूज्य सागर महाराज
(शिष्य आचार्य अनुभव सागर जी महाराज)

आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज के जीवन पर आधारित इस धारावाहिक के तहत आज हम जानेंगे कि सातगौड़ा को बचपन से इतना वैराग्य क्यों था? सातगौड़ा लौकिक आमोद-प्रमोद के कामों से दूर रहकर सदैव आस-पास और गांव में होने वाले हर धार्मिक कार्य में उत्साह से भाग लेते थे। वे शांत, सरल और निरुपद्रवी थे, जिद्दी प्रवृत्ति के भी नहीं थे। सातगौड़ा सत्य और मधुर भाषा बोलने में विश्वास रखते थे। अमीर-गरीब में भेद नहीं करते थे और सभी के साथ सकारात्मक दृष्टि रखते थे। कोर्ट-कचहरी के कामों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। सातगौड़ा सदैव अहिंसा के प्रचार-प्रसार के लिए अन्य लोगों से बात करते थे। वे सांसारिक बातों को लेकर किसी से भी चर्चा नहीं करते थे। सातगौड़ा राजनीति के बारे में कहते थे कि यह दुख और अशांति का कारण है। इससे दूर रहना चाहिए। भोज ग्राम में वेदगंगा और दूध गंगा नदी के संगम तट पर सातगौड़ा मुनियों को अपने कंधे पर बैठाकर नदी पार करवाते थे। सातगौड़ा खादी का बना बाराबन्दी वाला अंगरखा पहनते थे। धर्म से जितना प्रेम था, उतना ही प्रेम उन्हें धर्मात्माओं के प्रति था। सातगौड़ा जब शिखर जी की वंदना करने गए तो एक वृद्ध माता को अपनी पीठ पर बैठाकर यात्रा करवाई। यह पहाड़ी 27 किलो मीटर के लगभग की है। इसी प्रकार राजगिरि की पंच पहाड़ियों की यात्रा एक वृद्ध पुरुष को अपनी पीठ पर बैठाकर करवाई। सातगौड़ा का मन रहता था कि सब लोग किसी न किसी तरह का धार्मिक कार्य करें और आत्म कल्याण की राह पर प्रशस्त हों।

काव्य मन

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

कर्म

हर राह पर साथ यही है,
कभी गम कभी खुशी दे जाते हैं
वर्तमान, भूत, भविष्य इन्हीं पर निर्भर हैं
पुण्य-पाप इसी के कहने पर है,
भावों पर आधारित है इनका आना-जाना
न्याय-अन्याय नहीं होने देते किसी का
हर क्षेत्र में दखल किसी को नहीं छोड़ते
जो समझ गए बेड़ा पार, नहीं भटकते रहते हैं

पुण्य

स्वर्ग से मोक्ष का सफर करवाता है
भक्ति, आराधना, उपासना इसका टिकट
दान, वात्सल्य, करूणा है बुकिंग स्थल
देव, शास्त्र, गुरु बुकिंग मास्टर इसके
समर्पण, त्याग, श्रद्धा टिकट की कीमत
गरीब-अमीर सब खरीद सकते हैं इसको

"भारतीय इतिहास से मनुष्य को शिक्षा और प्रेरणा लेना चाहिए जीवन जीने की कला गुरु से ही मिल सकती है। - अंतर्मुखी"

संपादक मण्डल

डॉ. श्रेयांस जैन बड़ौत
प्रधान संपादक

प्रबंध सम्पादक

राजेश शाह
मुम्बई

सुरेश सबलावत
जयपुर

अजित जैन
उदयपुर

संपर्क नंबर : 9460155006, 9591952436

यह चित्र कुछ कहता है

शरद ऋतु में वनाका ट्री, वनाका, न्यूजीलैंड। तस्वीर : टॉम मैकी

जैन दर्शन की आधारशिला है कर्म सिद्धान्त

कर्म सिद्धांत अति कठिन विषय है। जो कुछ हम काम करते हैं, उसे हम सामान्य भाषा में कर्म कहते हैं। लगभग सभी धर्म कर्म के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। कुछ लोग कर्म को भाग्य कहते हैं, कुछ लोग कर्म को एक अदृश्य शक्ति मानते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि हमने जैसे कर्म किये हैं, वैसा ही फल हमें भगवान देता है। हिन्दू परम्परा में गीता में कर्म का उपदेश प्रमुखता से दिया गया है। लेकिन जैन आचार्यों ने कर्मबंध और कर्मफल प्रक्रिया का जैसा सूक्ष्म वर्णन किया, अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। **कर्म सिद्धान्त जैनदर्शन की आधारशिला है।**

डॉ. सुनील जैन संचय
ललितपुर

हम में ये तो पता ही है कि वो कर्म ही है, जिनके कारण हम संसार में भटक रहे हैं, और अब तक मुक्ति नहीं प्राप्त कर सके।

अक्सर हमने देखा है कि इस संसार में कोई बहुत अमीर है तो किसी के पास खाने के लिए भी पैसे नहीं है। एक ही माँ के बच्चे हैं, एक पढाई में निपुण है। उसे एक बार देखते ही सब याद और दूसरा कितना ही पढ़ले फिर भी भूल जाता है। जब हम सभी जीव हैं, सबका मूल रूप समान है तो फिर ये सब क्यूँ ? इसके पीछे कोई कारण तो होना ही चाहिए। जैन धर्म में इसका कारण "कर्म" को मानते हैं।

कर्म बंध की क्रिया अत्यंत जटिल है और इसे पूर्ण रूप से जान पाना अत्यंत कठिन है लेकिन यदि हमें केवल इतना भी ज्ञान हो जाए कि किन कार्यों से हम अशुभ कर्मों का बंध कर रहे हैं तो संभव है हम अपने पुरुषार्थ को सही दिशा देकर शुभ कर्मों के बंधन का प्रयास कर सकते हैं।

जैनदर्शन कहता है कि इस सृष्टि का निर्माता भगवान् नहीं है। सृष्टि अनादि काल से है, अनंत काल तक रहेगी, इसे कोई न बनता है न कोई बिगड़ता है। हम जैसे अच्छे-बुरे कर्म करते हैं, तदनुसार कर्म हमारी आत्मा के साथ बंधते हैं और उदय के सामान उसी के अनुसार उनके हमें अच्छे-बुरे फल मिलते हैं।

इसलिए जैन कर्म सिद्धांत स्पष्ट कहता है कि हमें बुरे कार्य छोड़कर अच्छे कार्य करने चाहिए।

हम जैसा करते हैं वैसा ही हमें फल प्राप्त होता है। कुछ कर्म हम करते हैं, कुछ कर्म हम बोलते हैं, और कुछ कर्म हम नए बांध लेते हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

जैन दर्शन के अनुसार भगवान अच्छा-बुरा कुछ नहीं करते! सब कुछ हमारे कर्मो के उदय के अनुसार होता है। वे तो सदा परम सुख में लीन सिद्ध शिला पर विराजमान हैं। जैनदर्शन कहता है कि यह संसार कर्म प्रधान है। जो जैसे कर्म करता है वह वैसा फल पाता है।

जैनदर्शन के अनुसार कर्म मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं- द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म

ये आठ प्रकार के भी होते हैं और उनकी 148 प्रकृतियां होती हैं।

आत्मा के साथ जो कर्म वर्गणाये चिपक जाती है उन्हें द्रव्य कर्म कहते है। ये अजीव हैं। जब ये उदय में आकर आत्मा में राग-द्वेष उत्पन्न करते है तो उस राग -द्वेष को भाव कर्म कहते है क्योकि ये जीव के होते है इसलिए ये जीव है। शरीर नो कर्म है। अजीव है।

कर्मों पर परम पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी ने लिखा है -जो हम विचार करते हैं वह हमारे मन का कर्म है। जो हम बोलते हैं वह हमारी वाणी का कर्म है। जो हम क्रिया या चेष्टा करते हैं वह हमारे शरीर का कर्म है और इतना ही नहीं जो हम करते हैं वह तो कर्म ही है, जो हम बोलते हैं वह भी कर्म हैं और जो हमारे साथ जुड़ जाता है संचित हो जाता है वह भी कर्म है।

इस प्रकार यह सारा संसार हमारे अपने किए हुए कर्मों से हम स्वयं निर्मित करते हैं और यदि हम अपने इस संसार को बढ़ाना चाहें तो इन दोनों की जिम्मेदारी हमारी अपनी है। हर जीव की अपनी स्वतंत्रता होती है।

संसार में अनेक पदार्थ अपने स्वभाव के अनुसार हमें सुख और दुःख देते है। जैसे नीम का सेवन करने से कडवा लगता है, दुःखदायक है, किन्तु गन्ना सेवन करे तो मीठा सुखदायक है। इसी प्रकार अजीव कर्माण वर्गणाओं के आत्मा के साथ जुड़ने के बाद कर्मरूप होने पर फल देने की शक्ति कर्मों में आ जाती है।

जैनदर्शन में कर्म के मूल आठ भेद भी होते हैं-

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय।

1. **ज्ञानावरण** : जो आत्मा के ज्ञान गुण को ढकता है, उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।
2. **दर्शनावरण** : जो आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है, उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
3. **वेदनीय** : जो आत्मा को सुखदुख देता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।
4. **मोहनीय** : जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।
5. **आयु** : जो जीव को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव में से किसी एक के शरीर में रोके रखता है, उसे आयु कर्म कहते हैं।
6. **नाम** : जिससे शरीर और अंगोपांग आदि की रचना होती है, उसे नाम कर्म कहते हैं।
7. **गोत्र** : जिससे जीव उच्च अथवा नीच कुल में पैदा होता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।
8. **अंतराय** : जो दान, लाभ आदि में विघ्न डालता है, उसे अंतराय कर्म कहते हैं।

इन आठ कर्मों में भी घातिया-अघातिया के भेद से दो भेद होते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार घातिया कर्म हैं, शेष चार अघातिया कर्म हैं।

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्हि आसु हम्हि राग दोस जुदो।
तं पव सदि कम्म रयं णाणा वरणदि भावे हिं।।९५।।

अर्थ - जिस समय यह आत्मा राग द्वेष भावों सहित हुआ शुभ, अशुभ भावों में परिणमन करता है, तब कर्म रूपी रज ज्ञानावरण आदि कर्म रूप में उसमें प्रवेश करता है और जीवात्मा के साथ बँध जाता है। कषाय के कारण पुद्गल कार्माण वर्गणाएँ कर्म रूप में परिणत होने के बाद वे कर्म जीवात्मा के साथ बँध जाते हैं, यही बंध है।

कर्म अच्छे और बुरे दोनों होते है जैसे वेदनीय कर्म के सात वेदनीय और असात वेदनीय दो भेद होते हैं। सात वेदनीय कर्म के उदय में हमें समस्त सुख सुविधाएं जैसे निरोगी शरीर, पुत्र, पत्नी आज्ञाकारी यश, अच्छी शान शौकत, लाभ आदि मिलती है और असात वेदनीय के उदय में समस्त बुरी वस्तुएं जैसे रोगी शरीर, अपयश, हानि आदि मिलेंगे।

संसार में हम समस्त सुख-दुःख अपने कर्मों के उदय के अनुसार अनुभव करते है,दूसरे को इनके लिए दोषी ठहराना गलत है। ये सब हमारे किये के परिणाम हैं। हमारे परिणामों अनुसार कर्म फल देते है। हमें निरंतर ऐसे कार्य करने चाहिए जिनसे पुण्य कर्म का बंध हो पाप कर्मों का बंध नहीं हो या कम से कम बंधे।

पूज्य आचार्य उमास्वामी ने बताया है कि कर्मों का क्षय होते ही कर्म मुक्त जीवात्मा (1) पूर्व प्रयोग से (2) असंग होने से (3) बन्धन टूटने से (4) वैसा स्वभाव होने से, ऊर्ध्वगमन से लोक के अन्त तक सिद्धशिला पर पहुँच जाता है। मुक्त जीव लोक के शिखर तक ही जा सकता है क्योंकि लोक से आगे अलोकाकाश में धर्मद्रव्य का अभाव है। कर्मों का पूर्ण अभाव हो जाने के कारण मुक्त आत्माओं का संसार में पुनरागमन नहीं होता।

आत्मा की मुक्ति या कर्मों से छुटकारा को मोक्ष कहते हैं। यह आत्मा के अस्तित्व की आनंदित अवस्था है, जो कर्मों के बंधन से, संसार से और जन्म मरण के चक्र से पूरी तरह मुक्त होती है।

जैन दर्शन कहता है कर्म किसी को नहीं छोड़ता। कर्म का फल भुगतान ही पड़ता है। इसलिए सदैव अच्छे कार्य करते रहना चाहिए, अशुभ प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

हमें समय और दूसरे लोगों दोनों को सम्मान देना चाहिए और दिल खोल कर उनका मदद करना चाहिए। ऐसा कोई नहीं, जिसने भी इस संसार में अच्छा कर्म किया हो और उसका बुरा अंत हुआ है, चाहे इस काल(दुनिया) में हो या आने वाले काल में। कहा जाया है "कर्म ही धर्म है" इसलिए हमें कर्म करते जाना चाहिए फल अपने आप हमें मिलेगा।

(आध्यात्मिक चिंतक एवं स्तंभकार)